IMPACT OF GLOBALIZATION ON LANGUAGE AND LITERATURE

- E d i t o r s -

DR. S. R. JADHAV

MS. D. D. TAMBE

MS. S. R. PACHORE

PRASHANT PUBLICATIONS

IMPACT OF GLOBALIZATION ON LANGUAGE AND LITERATURE

© Reserved

Publisher | Printer:
Rangrao A Patil (Prashant Publications)
3, Pratap Nagar, Dynaneshwar Mandir Road,
Near Nutan Maratha College, Jalgaon 425 001.

Phone | Web | Email:
0257-2235520, 2232800
www.prashantpublication.com
prashantpublication.jal@gmail.com

Edition | ISBN | Price
June, 2022
978-93-94403-00-0
₹ 525/-

Cover Design | Typesetting
Prashant Publications

DOWNLOAD **Prashant Publications** *app for e-Books*
e -Books are available online at
www.prashantpublications.com / kopykitab.com

All rights reserved. No part of this publication shall be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted, in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying (zerox copy), recording or otherwise, without the prior permission of the Author and Publishers.

Disclaimer:- The publisher/editor of the book is not responsible for errors in the contents or any consequences arising from the use of information contained in it.

27. वैश्वीकरण से प्रभावित मानवी जीवन (उपन्यास 'उत्कोच' के विशेष संदर्भ में) 175
– डॉ. संदिप तपासे

28. वैश्वीकरण और जनसंचार माध्यम..... 182
– डॉ. पूनम जिभाऊ बोरसे

29. वैश्विकरण के परिप्रेक्ष्य में उपन्यास –'अकेला पलाश' 188
– डॉ. सरला सुर्यभान तुपे

30. वैश्वीकरण : पर्यावरण संरक्षण तथा संवर्धण ('अभंगवाणी' के संदर्भ में...) 194
– डॉ. प्रविण मन्मथ केंद्रे

31. वैश्वीकरण की आंधी से उजडी असुर जाती 199
– प्रा. देशमुख शहेनाज अ. रफिक

32. आधुनिक परिदृश्य में संचार माध्यमों में हिंदी का प्रयोग 204
– प्रा. अनिल उत्तम पारधी

33. वैश्वीकरण के युग में हिंदी भाषा..... 208
– डॉ. प्रवीण तुलशीराम तुपे

34. वैश्वीकरण और हिंदी भाषा 213
– प्रा. सोनाली रामदास हरदास

35. वैश्वीकरण और जनसंचार माध्यम..... 216
– डॉ. शिला महादू घुले

36. 'वैश्वीकरण का हिंदी भाषा पर प्रभाव' 221
– प्रा. सुनील चांगदेव काकडे

37. वैश्वीकरण और हिंदी भाषा 224
– प्रा. संतोष अंबादास बावणे

38. बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिंदी और मराठी के सामाजिक नाटकों में चित्रित जातीय संघर्ष 227
– डॉ. राहुल मराठे

39. वैश्वीकरण की परिभाषा एवं स्वरूप..... 235
– डॉ. बाळासाहेब धोंडीराम बाचकर

40. वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में उदय प्रकाश का साहित्य 240
– डॉ. शरद कचेश्वर शिरोळे, प्रा. दिपाली दत्तात्रय तांबे

वैश्वीकरण की आंधी से उजडी असुर जाती

प्रा. देशमुख शहेनाज अ. रफिक
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, सोनई, जि. अहमदनगर

प्रस्तावना :

इकीसवी सदी जहा समाज में हर एक क्षेत्र में क्रांती आ गई वही समाज में न चाहते हुए भी कई परिवर्तन आए। समाज ने परिवर्तन तो स्वीकार किया लेकीन समाज की जो हानी हुई इसके विषय में सोचने के लिए मनुष्य के पास समय ही नही रहा। समाज के हर क्षेत्र को क्रांती की राह दिखाने वाला ये समय है लेकीन वैश्विकरण की दौड में मनुष्य में इतना परिवर्तन आया कि उसके पास समाज और स्वयं के लिए समय नही बचा केवल औद्योगीकीकरण के पिछे भागने की भागदौड लगी हुई है। मनुष्य के सपने हासील करने कि भूख खत्म होने का नाम ही नही ले पा रही है। वैश्विकरण के कारण 'वसुदेव कुटुंबकम' की भावना निर्माण हुई है। जनसंचार के कारण हर क्षेत्र में क्रांती हुई है। इस कारण मनुष्य-मनुष्य के ओर भी समीप आ रहा लेकीन जितना समीप आया उतनी उसकी भीतर कि मानवीय संवेदनाएँ कम होती जा रही है। वैश्विकरण को लेकर कई रचनायें है लेकीन वैश्विकरण का सबसे जादा असर जंगलो में बसने वाले आदिम जाती पर पडा। हमारे भारत में आज भी कई आदिवासी बहुल इलाके है और वहा की जनता आज भी अपने जन समुदाय को बचाने में लगी हुई है।

रेणेन्द्र द्वारा रचित 'ग्लोबल गांव के देवता' ठीक उसी प्रकार की रचना है जो वैश्विकरण के कारण स्वयं का अस्तित्व बचाने में लगे है। उपन्यास के आरंभ में ऐसा प्रतीत होता है कि गाँव का ही दृश्य है, इससे बेहतर तो राग-दरबारी में है और जो कुछ-वस्तुगत या कथ्यात्मक-कसर है वह नीलोत्पल ने अपने उपन्यास औघड़ में पूरी कर ही दी है, फिर इसमें कुछ नया क्या है? मेरी नज़र में तो हिन्दी पट्टी में २१ वीं सदी में वैश्वीकरण को लेकर रचे गए उपन्यासों में सबसे बेहतर और पहला उपन्यास है ग्लोबल गाँवों का देवता। इस उपन्यास की प्रशंसा में, इस पुस्तक के प्रकाशक 'भारतीय ज्ञानपीठ' ने लिखा है कि- वस्तुतः यह आदिवासियों-वनवासियों के जीवन का संतप्त सारांश है।- यह पंक्ति पढ़ कर महसूस हुआ कि अगर यह पुस्तक एक सारांश मात्र है और यही इतना संवेदनशील, दारुण है। यहाँ तक कि अंत तक पढ़ने पर शायद आप सिर भी पकड़ सकते हैं कि किस तरह आदिवासियों ने अपनी संस्कृति,

अपनी ज़मीन, अपने खुद के खेत अपने क्षेत्र के पेड़-पौधों को संरक्षित करने के लिए भयानक प्रताड़ना, तंत्र का अन्याय सहा है। अपना हक़ अपना हिस्सा माँगने मात्र के लिए 'असुर आदिवासी समुदाय' को सत्तासीन लोगों की क्रूरता, नृशंसता का जिस तरह शिकार बनना पड़ा यह सब पढ़ कर बार-बार ज़हन में यही सवाल आ रहा था कि क्या यह घटनाएँ इसी लोक की हैं? हमारे ही देश में घटित हुई हैं या अन्यत्र?

आग और धातु की खोज करनेवाली असुर जाती को सभ्यता, संस्कृति, मिथक और मनुष्यता सबने मारा है इस उपन्यास को पढ़ने के बाद यह बात बहुत हद तक साफ़ हो जाती है कि वैश्वीकरण के दीवार की बुनियाद किस क्रूरता पर रखी गयी है। जिस बॉक्साइट अयस्क से एल्युमिनियम हम सबको इतनी सुलभता से प्राप्त होता रहता है उसका मूल्य चुकाया है वहाँ के जनजातीय आदिवासी लोगों ने। जिनके हिस्से में केवल दुत्कार और अन्याय आया। दुर्भाग्य से वे उस क्षेत्र के निवासी हुए जहाँ पर एल्युमिनियम के अयस्क बॉक्साइट की खदानें थीं। फिर क्या वैश्वीकरण का अंधा दौर, खनिज पदार्थों से मूल्यवान कुछ भी नहीं था? और इस धधकती आग की लपट में सबसे अधिक जलें हमारे आदिवासी समाज के लोग।

प्राइवेट कम्पनियाँ :

चाहें वो देसी हो या विदेशी कंपनियाँ इन सबने हमेशा से उँगली पकड़कर हाथ पकड़ने का काम किया है। और अफरात मुनाफ़ा कमाना किसको नहीं अच्छा लगता है? भले ही वो दूसरे के हाथ का निवाला छीनकर मिल रहा हो। इन सब बड़ी कम्पनियों की सबसे बड़ी खराबी यही रही है कि अपना हित साध्य हो जाने के बाद वे उस जीवंत मानवीय क्षेत्र को गन्दे सड़े कचरे की तरह छोड़ जाती हैं। उन जगहों पर उनके स्वयं की वजह से फैली अव्यवस्था, पर्यावरणीय असंतुलन, आर्थिक पतन इत्यादि बहुत सी बातों को नज़रअंदाज़ करके ये निजी संस्थान निकल जाते हैं। और उसका भारी नुकसान सहते हैं वहाँ स्थानीय लोग, पशु पक्षी, वहाँ की नदियाँ, वहाँ के जंगल और वहाँ की ज़मीन। भले ही उनको उस क्षेत्र से अरबों-खरबों का फायदा हुआ हो। सरकार को इससे क्या जाँच टीमें भेजी जाती हैं जिसका लब्बो लुआब होता है इस अवैध धन उगाही पर लीपा पोती करना। फिर सारी जाँच रिपोर्ट सकारात्मक ही आती है इन सारी बातों को रणेंद्र इस उपन्यास में बहुत बारीकी से उतारा हैं।

उक्त घटनाएँ तो एक क्षेत्र विशेष और बॉक्साइट के खनन से ही सम्बन्धित हैं लेकिन ऐसी हज़ारों गाथाएँ होंगी जिनका इतिहास कभी ज़िक्र भी नहीं करेगा। प्रकृति के ये रखवाले अपनी ज़मीन की रक्षा करते-करते अन्ततः हार जाते हैं। इनका लोहे जैसा इरादा और इनका खून पसीना सब वहाँ की मिट्टी में ही मिल

जाता है और अंततः धरती माँ की ये संताने अपनी माँ की गोद में चुपचाप सो जाते हैं और हम कमरों में अपनी अय्याश व्यस्तताओं में जानवर से जी रहे होते हैं इन सब को जानते हुए भी अनजाना कर के। ताज़्जुब इस बात का है कि ये घटनाएँ इतनी सजकता से छुपाई गयी हैं कि आने वाली शहरी पीढ़ियों को इस बात की भनक भी नहीं लगेगी।

रणेंद्र ने आदिवासियों के स्थानीय समस्याओं को अपनी इस कृति के माध्यम से पुनः जीवित किया है किया है। इसका एक पक्ष बाबाओं के ढोंग और पाखंड को भी दिखाता जिसका कितना भारी मूल्य उस आदिवासी समाज के लोगों को चुकाना पड़ता है। जहा समाज में शिक्षा जैसे पवित्र शब्द भी बाबा कंठधारी द्वारा तार-तार किया जाता है। जहा वह अशिक्षित आदिवासी को मूर्ख बनाकर काले वस्तु का त्याग करणे के लिए कहता है जहा गांव के भेड-बकरी उनकी जमा पुंजी है जो उनका एकमेव सहारा है जो शादी, सुख-दुख में उनके आय का साधन है लेकीन बाब कंठधारी के शरण में जाने के बाद गांव के काली भेड-बकरी, मुर्गी, सुअर आदी को बाजार में बेचा जाता है। बाबा कंठधारी का मनना था की ये काली चीजे असल में काले पिशाच है। बाबा ने लडकियों के शिक्षा के लिए निवासी विद्यालय आरंभ किए थे लेकीन इस के पीछे बाब का घीनोना चेहरा छुपा हुआ था जो शिक्षा के नाम पर वहा पढनेवाली आदिवासी लडकियों का शोषण करता था। आज समाज में बाबा कंठधारी की तरह कई बाबा मौजूद है। तमाम साम्यताओं के बावजूद इस उपन्यास की अपनी मौलिकता है इसकी विषय-वस्तु और उसकी प्रस्तुति मन मोह लेती है। स्त्रियों की नेतृत्व क्षमता, उनकी मजबूती और जिम्मेदारियों का भी बखूबी वर्णन किया है रणेंद्र ने इनका प्रभाव अंत तक बना रहा है।

रेणेन्द्र ने झारखंड इनसाइकालोपीडिया (चार खंडो में) का संकलन किया। रेणेन्द्र ने आदिवासी समुदातों की सामाजिक, संस्कृतिक विशेषताओं अतः संबंध, वैश्वीकरण के विकास का प्रभाव का गंभीरता पूर्वक अध्ययन किया। यही कारण है की उनका उपन्यास ग्लोबल गाँव के देवता काफी प्रामाणिक बन पड़ा है। ग्लोबल गाँव के देवता उपन्यास में लेखक ने झारखंड के कोयलबिघा भौंरापाट, सखुआपाट और वहा के आस पास के पाटों का उल्लेख किया है। जहा वैश्वीकरण के कारण इन आदिवासी जन समुदाय की अवस्था का आंखो देखा हाल यह उपन्यास बया करता है। मास्टर जी वहा का वर्णन करते हुए कहते है मीलों तक पसरे पहाड़ के ऊपर का यह चौरस इलाका मन को और उचाट कर रह था। छिटपुट जंगल, बाकी दूर दूर तक फैले उजाड़ बंजर से खेत। बीच-बीच में बॉक्साइड की खुली खदाने।

जहा से बॉकसाइड निकाले जा चुके थे वे गड्ढे भी मुंह बाये पड़े थे। मानों धरती माँ के मुंह पर चेचक के बड़े-बड़े धब्बे हों।[१] बॉकसाइड के लिए वहा के जमीन से पेड़ काँट दिये गए है कहने के लिए यह आदिवासी बहुल इलाका है लेकिन वैश्वीकरण ने वहा के प्रकृति को सुंदर से कृरूता में परिवर्तित किया है।

असुर जाती प्रारंभ से ही प्रताडीत है फरक इतना है की आरंभ में इंद्र, सिंगबोगा, पांडवने इनका सर्वनाश किया और भूमंडलीकारण की दौर में इनका स्थान वेदांग, शिंडालको जैसे ग्लोबल गांव के व्यापारियो ने लिया है। जो पुरी तयारी के साथ इन्हे अपने जमीन से खदेडने के लिए तयार है। इस कार्य में शासन एवं सत्ता का पुरा सहयोग इन्हे प्राप्त है। वेदांग अपनी एल्युमिनियम फैक्ट्री लगा सके इसलिए सरकार इन इलाके (झारखंड के आदिवासी इलाके) में भेडियो कि घट रही संख्या को लेकर चिंतीत है इसलिए आदिवासियों के सेत्तीस वन गांव को खाली कर वहा अभयारण्य बनाने का निर्णय लेती है। शासन और राजनेता का सहयोग पाकर ये कंपनियां खदान बुझाने के जो अशवाशण देती थी वह भी पूर्ण नही करती थी इस कारण वहा के आस पास के कई लोगो की मलेरिया के कारण मृत्यू हुई थी। वैश्विकरण के नाम पर जो नये-नये सिद्धांत गडे जा रहे है वही आदिवासियों के साथ कई घटनायें घटीत हो रही है। अपने हक्क के लिए लढने वाले व वेदांग कंपनी का विरोध करनेवाले बलाचन असुर, रूनझुन असुर और उनके सहकारी असुरो की पोलीस द्वारा उनकी हत्या की जाती है लेकीन दुसरे दिन अखबार में तिसरे क्रमांक के पृष्ठ पर छ्पकर आता है तिसरे पेज पर दो कॉलम का समाचार छपा था कि पथारपाट में हुए पुलिस मुठभेड में छः नक्सली मारे गये। नक्सलीयों में कुख्यात एरिया कमांडर बलाचन भी शामिल था। फिर बलाचन के नृशंस करणामों का विवरण। किस एस.पी., दरोगो की हत्याओं और किन-किन बैंक डकैतियों में वह शामिल रहा था। एकदम आंखो देखा विवरण। अंत में इस बात का भी उल्लेख था की भाकते समय नक्सली लाशे उठा ले गये। पोलिस फोर्स लाशों की तलाश कर रही है.[२]

लेखक ने असुरों की संस्कृती का उल्लेख करते हुए कहा की उनके संस्कृती में औरतो को जननी न कहकर सयानी कहा जाता है और साथ ही जिस भूमंडलीकरण की दौर में लेविंग रिलेशनशीप का जो फैशन आय है वह तो आदिवासी समाज के संस्कृती का पुराना हिस्सा है। यह बात ललिता मास्टर साहब को बताते हुए कहती है- आपकी ही दुनिया के लिए नयी बात थी और अभी अभी फैशन में आयी थी। आदिवासी समाज में यह तो बहुत पुराने दिनों से मान्य है.....इसीलिए यह लिविंग टुगेदर का फैशन यहीं से उतरकर वहां गया है।[३] आज भी आदिवासी समाज उनकी

संस्कृती हमारी संस्कृती से कुछ भिन्न है।

लेखक ने आदिवासी समाज के अंधश्रधा का भी जिक्र किया है। आदिवादी समाज में आज भी मान्य है की धान के समय मनुष्य के रक्त से फसल को सिलाने से धान अछी आती है। इसलिए धान के समय में वहा अक्सर मुंडी कटवा लोग घुमते है। इसलिये उस समय वहा जान की रक्षा करना महत्वपूर्ण बन जाता है।

वैश्विकरण की अंधी दौड ने वहा के जनसमुदाय का संपूर्ण अस्तित्व छीनकर उन्हे अपनी भूमी से खदेड दिया है। जंगल के मुल निवासी होकर भी वैश्वीकरण के कारण वर्तमान समय में वे अपने पुर्वाजों के स्थान पर नहीं रह पाते।

निष्कर्ष :

वैश्विकरण की आंधी में वैश्विक ताकतों (ग्लोबल गांव के देवताओं) के आगे हमारे गांव कितने लाचार और बेबस नजर आते है यह उपन्यास इसी का संतप्त सारांश है। वैश्विक गांव का जैसे जैसे विस्तार होता जा रहा है वास्तविक गांव वैसे ही संकोचित होते जा रहे है। वैश्विक गांव वास्तविक गांवो को तेजी से निगलते जा रहे है वैश्विकरण किस प्रकार ग्रामीण जीवन को निगलता, प्रदूषित करता जा रहा है इसका प्रामाणिक दस्तावेज है 'ग्लोबल गांव के देवता' यह उपन्यास। वैश्विकरण ने गांव का वातावरण ही खराब नही हुआ बलकी प्रकृती को भी कुरूप बनाने का कार्य किया है।

संदर्भ ग्रंथसूची :

१. ग्लोबल गाँव के देवता, रेनेंद्र, पृष्ट क्र. ९
२. ग्लोबल गाँव के देवता, रेनेंद्र, पृष्ट क्र. ८८
३. ग्लोबल गाँव के देवता, रेनेंद्र, पृष्ट क्र. ७६